दृश्यों की धार

भारतरत्न भार्गव



संभावना प्रकाशन, हापुड़-245101



राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर
के आर्थिक सहयोग से प्रकाशित

दृश्यों की धार (कविता संग्रह)
प्रथम संस्करण 1986 मूल्य 25 00
प्रकाशक संभावना प्रकाशन, रेवती कुंज, हापुड़-245101
मुद्रक हरिकृष्ण प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली 110032
आवरण का चित्र मनजीत बावा

DRISHYON KI DHAAR (Poems) By Bharat Ratna Bhargava
First edition 1986 Price Rs 25 00

सौमित्र के लिए

कविता-क्रम

बांसुरी

सोचा था
इस स्याह चुभते सन्नाटे में
जब चांदनी गाएगी
तब मैं भी
तुम्हारे प्रतीक्षारत अधरों पर
एक बांसुरी रख दूंगा।
आकाश की पीठ पर
लटकी गठरी में
अधलेटे बच्चे सा सूरज
जब टुकुर-टुकुर ताकेगा—
दूधिया किरनें झुनझुना बजाएंगी।

लेकिन यह क्या हुआ ?
कैसा यह आर्तनाद ??

बूढ़ी रात रो रही होगी !
प्रिये, मुझे क्षमा करना,
शायद यह बांसुरी मेरी नहीं थी !

[1982]

प्रपच

यात्राएँ
पूरी होने के लिए
नही हैं।

कलात्मक भूल भुलैया
ऐतिहासिक बीहड जगल
गहरी खाइयाँ
ऊचे शिलाखड—
    निहारना आदिम सकल्प !

    बूंद-बूंद
    रिसता सामथ्य !!

    बेहद थके पाँवो में
    चिथडे-चिथडें जूतो की तरह
    फसे
    आश्वासन !!!

[1986]

आतंक

पूरे शहर मे
दहशतनाक
        सन्नाटा !

(बिजली घर के प्लाट मे
चूहे की मौत)
रोशनी के गाल पर
अंधेरे का चांटा !!

[1 74]

भवितव्य

गहराने लगी है रात ।

पश्चिमीय रक्त कुड मे
बलित सूय की
छितराई हुई आत । ।
हाय,
अब कैसे होगा प्रात ?

[1959]

स्मृत्याभास

एक कब्र है—
ज़िन्दा दफनाई गई अतृप्ति की
और उसके पूर्वोत्तर खड़ा
    एक सफदे का पेड़
सँभीली किरणो की बिदाई के बाद
जिसकी बाहे उदास होकर लम्बी
    लटक गई हैं ।

कब्र पर एक धुंधली छाया
चुपचाप आकर लेट गई
हवा जिसके इशारे पर
सफेदे के भरे सूखे पत्तो को
    दूर किसी खाई तक समेट गई ।
आसमान का सुन्न होता शरीर !
सपन-पाखी किरन के दो अनछुए ओठ !!

प्यार
    जैसे कोई रख गया—
    कब्र के सिरहाने बुझा हुआ दिया !

आह,
    मैंने तुम्हे कब याद किया !?

[1966]

आह

लेट लूं दो पल
इस दरियाई घास के बीच !
दर्द करकराता है।
करकराने दूं ?
भूलने की कोशिश तो करूं—
आंखें लूं मीच !

आह,
ओ आह,
अरी ओ आह,
ओ नीच !

[1958]

इस वक्त

फिर मैंने अपने पांव
जमीन मे धंसते हुए महसूस किए हैं
एक बार फिर
मैंने अपनी हथेलियो से
रोशनी की डोर को फिसलते हुए पाया है

अभी-अभी
मेरी आंखो के अंधेरो ने
सूरज के ताप से दहशत खायी है

क्या है वह
जो मेरी आकाक्षाओ को
असभव गिरफ्त मे जकडे है ?
क्या है वह
जो मेरे सामर्थ्य पर
मायावी वज्र की तरह टूटा है ??

क्या सचमुच
मेरा बौनापन
इतना ही बौना है
जितना मैं अनुभव कर रहा हूं—
इस वक्त !

[1980]

खामोशी

जुबान काट दिए जाने के भय से
चुप रहना
कितना निरापद होता है—
तुमने बताया।

गलत कह दिए
या समझ लिए जाने का
संशय भी
मौन का जनक होता है—
उसने कहा था।

संदर्भ मेरी खामोशी का है
उसका पिता नपुंसक था—
यह बात उसने मरते वक्त बताई!!

[1976]

दोप मुक्त/युक्त

ओ अनागता,
आज फिर हृदय के अतलान्त मे
अनाहूत इच्छाएँ
सपनो की सीमा घेर कर खडी हो गई हैं।

बोलो,
इन्हे क्या करूँ ?
दोप इनका भी क्या ?
दोप तो दृष्टि का है,
सांस का है।
टूटे इद्र धनु के बिखरे रग
सौरभ के साथ
हृदय मे गहरे तक उतर आए हैं।
बोलो,
इन्हे क्या कहूँ ?

मैंने
मेघो की पसरी हुई हथेलियो पर
नयन किरन से शब्द वेध दिए हैं—
ये जब तुम तक आएँ
तो इनकी हथेलियो मे छिपे
घावो को पढ लेना
शब्द यदि टूटे हो—
दद का कोप खोलना—
देखना, समझना, गढ लेना।

[1965]

अस्तित्व

कागज की छोटी-छोटी चिन्दियाँ,
टूटे हुए खिलौने,
कुछ व्यर्थ श्वासो सी रेंगती धूल
(मेरे कक्ष की सम्पूर्ण सृष्टि)
जाने क्या हो गई है ?

लगता है—
कोलाहल से असफल सघर्ष के बाद
हार और जीत के अन्तर को समझ
थोडी देर को
चुप होकर सो गई हैं।

[1965]

अर्थ-बोध

प्यास का अर्थ—
            मुक्ति के लिए छटपटाती हुई साँस !
बोध का अर्थ—
            कुछ और और सत्रास !
सोचता हूँ तो सब कुछ
            अनथ सा लगता है,
लेकिन
किसी भी सदर्भ में,
      किसी से भी,
            कुछ भी कहना
                  एकदम व्यथ सा लगता है।

[1967]

पुनरावृत्ति

सडक का क्रॉस !
यत्र-तत्र ठोकी गई कीलो से लैम्प-पोस्ट ! !
बार-बार
घटती और बढती परछाइयाँ ! ! !
किसके मौन वक्षस्थल पर
काला, ठडा रक्त सा बहता है ?

मैं भ्रमित हूँ
या
!?
मुझे ईसा याद आ रहा है।

[1965]

दर्द एक व्याख्या

अनजाना, अपरिचित दर्द
अनदेखा, अनछुआ दर्द
मीत तुम्हे पता क्या—
      कैसा है?
कहो तो बताऊं?
      लो सुनो—
दद एक नीम की निम्बोली सा
कच्चा तो कड़ुवा है,
पकने पर मीठा है,
      बहुत गुणकारी है।

[1955]

जैसे मैं

पाखी नही था वह,
पाखी का
पख था !

कोमल तन,
भेद कहाँ रह पाया ?
त्वचा जहा—
उग आए पख वहा !

जीवन नही था,
वह जीवन का अग था !

आकाक्षा युवा हुई पाखी की।
साध नई,
फैल गए पख कई।

जब-जब उडान भरी,
शून्य नही—
अक था।

कैसा सघात हुआ !
पख नुचा
टूट गया,
पाखी के
उगा नया !

नुचा हुआ पंख
अब कितना निस्संग था—
जैसे मैं !

[1986]

भूखे आकर्षण

फ्यूज़ हुए बल्बो की लम्बी कतार मे
अनचाहे जल गए लट्टू सा एक नाम
जाने क्यो अब तक भी बुझा नही।

नीद भरी दीवारो के माथे पर
उभरी कुछ सिलवट, कुछ रेखाएँ,
मैने भी
कथा-व्यतीतो के अन्तहीन-अन्त
फिर-फिर दुहराए।
दृश्यो की धार पर लुढक गई
परिचय की विस्मृति सी एक शाम
कटी हुई अगुलिया देख रही।

उखडे पलस्तर से
बेमानी यात्रा के सस्मरण,
चाबुक की मारो से
उघड गई भावुकता,
ठेल रहे पावो को
कुछ भूखे आकर्षण।

ठहर गया एक हाथ शून्य मे
फिसल गया एक पाव,
काई पर अटक रहा कही कही।

[1968]

हारे सदर्भो का सत्य

क्या होगा,
ठडे पारे से तन के नेह-दान से
ऊष्माएँ अगर नही जनम लें ।

रंगहीन दृश्यो को
झरने दो आँखो से,
टूटे यह सम्मोहन !
हारे सदर्भो के सत्यो सा
चुक जाए,
सभव है—
आगत क्षण !

शायद हम थूक दें
जुगाली से जुमले,
थोडा तो काम लें अनुमान से !

बार-बार
सदेही अधरो पर
अधर नही,
अगुली सी धर देना !
भला नही लगता है
बालू के पन्नो को
मन के आखर देना !

आओ,
सकल्पित हो,
नए अथ ग्रहण करें इस विधान से—
भूल भूल जाएँ यदि फिर मिलें !

[1970]

अवसर

खेत की मुंडेर पर
दुबक कर बैठा
चिड़िया का नन्हा सा बच्चा।
एक
खूंखार जगली बिल्ली
दबोचने की फिराक मे
बैठी घात लगाए !

बालिया, टिड्डियाँ, ठूठ
प्रतीक्षा करते हुए
पटाक्षेप के समय
तालिया बनाने के
अवसर का !
(1986)

वदी समय चौंक जाता है

पत्ती-पत्ती कांप गई !

पहरा देती हवा कक्ष के,
दृश्यो की आंखो मे जल,
वदी समय चौंक जाता है
रह-रह वज उठती साकल !

जाते जाते
वद द्वार पर
किरन हथेली छाप गई !

किसी विवशता से परिचालित
बोझा ढाती परछाई
टूटी रेखाओ से बनती
कुछ दीवारें
 या खाई !

हारे तन की एक उबासी
सब बीते दिन नाप गई !

लावा पीती सांस
देह की नस नस मे धँसती टूटन,
नीले ओठ पपडियाए से,
अँजुरी मे रेतीले कण !
शेष रह गया ताप,
तरलता
(जैसे उडती भाप)
गई !

[1967]

कस्तूरी की गध

ऐसे खडित मन को भी
भरमा गई—
    याद तुम्हारी
कस्तूरी की गध सी !

आम्रवृक्ष के
सूखे तन पर
घायल कोकिल सी
सुधिया !
लिपट गई हैं मुझमे
जैसे
आहत शिशु माँ के आचल !

रचो कल्पनाएँ
नयनो मे
किसी समर्पण वेला ने !
इस सदली बिम्व पर
उतरे
उस विषधर क्षण के केचुल !

प्यास
बहुत लाचार हो गई
प्यार से—
    रेशम की डोरी मे जकडे
    बध सी !

वातचक्र मे घिरे हुए
टूटे पत्ते की चेतनता !
इस गतिभ्रम को
तोड न पाने का
यह छिछला सम्मोहन !
थकी दृष्टि
चुभते दृश्यो को
अनस्वीकारे चुक जाती,
किन्तु
खोजने की आकुलता
अर्थहीन
उडते चुम्बन !

रह-रहकर
भावुकता रही उकेरती—
अनगाए से
प्रणय-गीत के छद सी !

शब्दो के बढते हुजूम मे
अर्थ कुचल कर
छूट रहे !
जन्मी हुई विवशताओ को
मिल पाती
अभिव्यक्ति नही।
यह सर्पिल सा घूम
विचारो को
कुण्डल मे कसे हुए,
जाने कैसा मोह
कि फिर भी
मिट पाती आसक्ति नही !

यह सदर्भरहित मौन—
जैसे तुमने
हँसी हँसी मे दे दी हो
सौगध सी !

[1971]

अभावानुभव

आज अनायास
बादलो की छत तक की
ऊँचाइयाँ नापते हुए
बूमरँगी सपनो से
उपलब्धियो का करते हुए शिकार
दहशत से पीले पडे पत्तो के लिए
छीन कर लाते हुए हवाओ का स्पदन
महसूसा मैंने
नही रहा मेरे कधे पर कोई हाथ !

कभी पाँवो मे गडे काँटे
निकालते रहे सहयात्री
और टीसता रहा
अन्दर ही अन्दर
एक अनाम दद !

कभी कभी
भटकता रहा हूँ अकेला भी
अपेक्षाओ के खँडहरो
और आकाक्षाओ के जगलो के बीच
लेकिन कोई भी किरन
ओठो पर नही धर सकी मेरी तृषा !
और कभी
उलझे सम्बन्धो की डोरो से खेलता रहा
नासमझ खरगोश की तरह
और बाँध लिए अपनी ही देह पर सीखचे !

अक्सर
भेदते रहे मेरे ज़िद्दी अर्थ
शातिराना शब्दों का व्यूह
फिर मर गए अभिमन्यु की तरह !

इस पूरी यात्रा के दौरान
महसूसा मैंने—
नहीं मिला कोई भी सम्बोधन !

[1978]

और क्या होता

तमाशबीनों के सामने
मदारी की डुगडुगी पर
नाचता रहा विवेक !
दागता रहा
सलामी की तोप—
एक मरियल तोता !
तमाशा ही तो था,
और क्या होता ?

[1978]

पश्चात्ताप होता है

नही पडी
 आसमान मे दरारें
न फटा
 ज्वालामुखी
सेना ने नही बजाया शोक सगीत
न औंधी हुई बन्दूकें
न झुके झडे
न दफ्तर खाली हुए
न स्कूलो-कालेजो मे हुई हडताल !

ऐसे ही टूटना था तुम्हे
ऐसे ही होना था मेरी आस्था का अन्त
ऐसे ही खडित होनी थी मूर्ति
 जनतन्त्र की ?

मुझे इस प्लैटीनम की मूर्ति से
 नफरत हो गई है। इसको बेलियाँ लगा कर
राजनीति
ठगती रही है डालर और पाउण्ड और रूबल/छीनते रहे हैं लोग
अधनगी आजादी के कपडे ऐन चौराहे पर। हर ड्यूटी
बदलने वाला सतरी हाजरी भरने के लिए बलात्कार करता है।

फुटपाथ का ठेकेदार पिलाता है चावल का पानी और
नोचता है माँस। सरकारी पट्टे लगाए घूमते हैं वहशी
कुत्ते और भौंकने की शक्ति जुटाने के लिए काटते हैं
छोटी-छोटी बोटियाँ।

वाकई, मुझे इस जनतंत्र से नफरत हो गई है।

उन्नीस दाँतो के बीच ज्वार के दाने को भींचे हिन्दुस्तान
अगर तुझे आवाज न दे सके, तो क्या आश्चर्य ?
क्योकि सपने मे उसने अपने चौरानबे दाँतो के बीच
चादी की डबलरोटी का टुकडा देखा है। कहता है सपना
कि वह भूखा नही है, और वह पिचके पेट को दोनो
हाथो से भींच कर लाता है ओठो पर मुस्कान। इत्मीनान
से मुस्कराता है।
इतने इत्मीनान का देश दुनिया मे दूसरा कहाँ है ?
(सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा)

अवरुद्ध हो गया
स्वतंत्रता की देवी की दुहाई देने वाला कंठ !
अमरीका और
इंगलैंड और पुर्तगाल मे बटेंगे इश्तिहार
अफसोस !
हमारे इतिहास के पृष्ठ कोरे हैं। क्योंकि
हम नही जानना चाहते
न लिखना चाहते हैं
अपना इतिहास !
गौतम और अशोक से आगे बढने पर
हमारा अतीत हमारे सीने पर अपने तेज़ नाखूनो वाले
पंजे रख देता है।
क्या होगा इन नामो का ?
भगत सिंह और सुभाष
मुक्तिबोध और लोहिया और !
नही, मत दुहराओ ये नाम
नपुंसको की भीड
कुर्बानी का अर्थ समझकर
भय से बेहोश हो जाती है।

झूठ कहते हैं लोग
कि टूट गया है कोई बडा प्रकाशस्तम्भ
कि लगडी मानवता का
दायाँ अग लकवा गया है
कि प्यार और आक्रोश आत्महत्या करने चले गए हैं —
अपनी गलत परिभाषाएँ सुनकर
क्या होगा ?
बूढी इन्सानियत के चेहरे की
झुर्रियो का क्या होगा ?
गलत कहते है लोग। झूठ कहते हैं। क्योकि लोग कुछ नही कहते हैं
आजकल। कहता है स्वार्थ, और फरेब, और धूर्तता
और मक्कारपन।
वे खुद कुछ नही कहते। वे बहुत भोले हैं। उनके काले शरीरो पर
सफेदी पोत दी है समझौते की कूची ने। झाँकती है सफेदी।
बोलता है फरेब। वे न देखते है न कहते हैं।
और,
जिनके कधो पर टूट पडी है एक अधवने मकान की छत,
वे महसूसते हैं अनिवचनीय पीडा, दु ख, बोझ। और उनकी
आँखो से आसू की वजाय चू पडता है
पसीना

कौन था मेरे देश का प्रतिनिधि ?
जिसकी राख सोनपाखी बन कर
खेतो खेतो मे चहक उठी थी वह
या वह
जिसकी शव यात्रा पर
सेना ने नही बजाया शोक सगीत।
न औधी हुई वन्दूकें,
न झुके झड
कही कुछ नही हुआ।

जल गई एक चिता
दिशाओ के हाथो पर मार कर करट।
देखती ही रह गई
दूरबीन लगा कर हवाए !
अटकी ही रह गई कठो मे
बाइबिल और फातिहा और गरुड पुराण
बांध नही सके अपनी सीमाओ मे।
सीमाएँ
तोडी थी उसने इस तरह
कि उसका इतना बडा ससार
खुद उसके लिए ही छोटा पड गया।

पश्चात्ताप होता है मुझे
क्यो नही था मैं
उसके झडे की धूप मे तपने वाले
पांच-सात लोगो में से एक !

[1967]

क्यो नही

मेरे सीने को चीरता हुआ रोशनी का चाकू
जिस मुट्ठी मे बद है,
वह
नही है।
सगमरमर के टूटे हुए बुत को तराश कर
बुझी हुई मशाल रखने की जगह
बनाई गई है सभा-भवन के सामने। चहो की
सभा मंडराती हुई बुभुक्षित चीलो को दावत के लिए
लुटाती है अपने बच्चे। द्वार पर हाफता रहता है भेडियो का झुंड।
चीत्कारो के छोटे छोटे टुकडे
उडते हैं नुचे पखो की तरह। हाफ
रहे हैं भेडिये हड्डियो की तलाश मे और
सहमा हुआ है वक्त
सोचता है
भेडियो के मुंह मे कभी नही आते झाग।

[2]

अस्थियो को ओढे एक गदहा
वीराने मे से होकर गुज़र जाता है। पीता है
कराहती हुई हवा और
खाता है
ठोकर
या चोट
या घाव। असम्पृक्त खुरो से पिटकर
और लम्बी हो जाती है परछाई तेज़ धार वाले चाकू की।
सामने की खिडकी से विपन्न अँधेरा झाकता है—

"कही मेरी देहरी पर किसी ने रोशनी की
छुरी तो नही फेंक दी ?"
नीद की गोलियो और निरोधक की जरूरत महसूस
करती है दैहिक आग। उगल नही पाता जजर वक्त
हलक मे अटका काला खून। खाँसता है। जूठी पत्तलो के
ढेर मे सिर छुपाने की कोशिश करती है भूख। जकड जाती है
आक्टोपस की गिरफ्त। बाहर छटपटाता है
लहू-लोहान धड। क्योकि
आदमी पुआल मे सिर छुपाता है। उसे खाता नही।
कोई भी !

] 3]

मेरे विचारो की कोख मे किसी ने मिट्टी का तेल डाल दिया
है और आग लगा कर वह भी कूद गया है उसमे।
जुलूस और आन्दोलन !
हडताल और बद !! भूख का हल नही देते। देते हैं
मौत।
जिन्दगी का हल।

हल नही मिलता। सुलगती हुई बजर धरती और
बाढ मे डूबे तिमजिले मकान की छत
दोनो
मेरी हथेलियो से चिपट गए हैं। नही मिलता
कोई हल !
बुरका ओढ कर गुज़र गई रिलीफ। हैलीकाप्टर से टपके
चावलो के पैकेटो से जन्म लेते हैं वोट। विघाताओ के
नाम सोमवार से शनिवार तक बदलते हैं
आया राम
गया राम

हाय राम, गिद्धो के डैनो पर झूल रही है विधान-सभा !

गदहे और चूहे ढूंढते हैं कोई हल—
निष्फल ।
कोई तेज धार बाढ की, याकि चाकू की
मेरे सीने को चीरती हुई क्यो नही हो जाती पार,
क्यो नही ?

[1969]

मानव-अस्थियों के ढेर पर बैठी
मत-पत्रों का पौधा रोप रही थी।
पास ही रखे थे कुछ आश्वासन—
टूटे, जंग लगे औज़ारों की तरह गड्डमड्ड
वर्षों से बर्फ की परतों से ढके।

टोह लेते तलुवों की आंच से
बर्फ पिघलने लगी,
आश्वासनों की जंग उतरने लगी,
कसी हुई मुट्ठियों
और धनुष की तरह तनी हुई भौंहों से
सवालों का जुलूस उमड़ने लगा।
बंदूकों, राइफलों की गोलियां
कवायद करती हुई सलामी मंच तक जा पहुंची

सारी बस्ती
हाय-हाय करती
लाय की लपटों में घिरी थी
और सुरक्षा-सैनिक
भालों की नोकों पर बाटियां सेंक रहे थे।
बस्ती की नंगी ज़रूरतों ने
सूखे पत्तों से उड़ते संविधान के अक्षरों को
चिथड़ों की तरह बदन पर ओढ़ लिया।

सत्तर करोड़ भूखी उम्मीदों के
झुके हुए कंधों पर टिकी
एक भव्य अट्टालिका में बैठ कर
वे दुनिया के सबसे बड़े
जुआघर का संचालन कर रहे हैं।

महाभोजो और महासम्मेलनो की
उपलब्धियो का हिमालय
और अधिक विशालकाय नजर आता है
पेट के सूखे समन्दर की सतह से ।

कैसे हो जाता है वह सब
जिसे देख कर धूप भी अधी बन जाती है
पटरी से उतरे हुए इजिन के चक्को से
बाँहें बाध देने पर
कैसे पूरी हो जाती है यात्राएँ ?

यह सडक अफलातून के राजमहल की तरफ जाती है
जहाँ तक चलते-चलते
घिसने लगता है आदमी
जूतो की तरह
और महल
शताब्दियों से
अनछुआ खडा है ।

हवा !
कहाँ गई तुम ?
अब मैं खाल से चिपके अक्षरो को
छीलना चाहता हूँ
कहना चाहता हूँ—
ब्रह्मपुत्र की
घाटी का
ये द्वार
जलियाँवाला बाग की तरफ खुलता है ।
[1984]

बेबात की बात

हो सकता है
बात तुम्हारी सही हो,
लेकिन सोचो तो,
अंदाज़ कितना बदज़ायका है तुम्हारा !

अहसास नही
अंदाज़ है काव्य का मर्म
उपलब्धियो के शिखरो पर नाचती—
सभ्यता का राज़
गहरे पैठोगे तो पाओगे—
यही है गीता का कर्म !
आओ, अंदाज़ का ढोल बजाए !!

ऊँ हूँ
गाओ मत
गाने मे होते हैं शब्द
शब्दो मे होता है अर्थ
अर्थ मे होती है गंध।
मुझे उस गंध से चिढ है
जो तुम्हारी बातो से आती है।

बस भी करो,
रोओ मत !
हमने भी देखी है भूख
मौत का निवाला बनती हुई
तडपती, सिर धुनती हुई
देखा है हमने भी

ये नज्जारा—
डाल कर आंखो मे आँखें।
लेकिन उस कीचड के ताल से
गुज़र कर भी
हम निर्मल बने रहे
पकज की तरह
चेहरे पर नाचती रही
सहस्र दल की पाखें
कुछ नही बिगाड पाई हमारा—
भूख की आँखें!

इसको ही कहते हैं कला
वरना कविता तो और भी करते हैं फलाँ-फलाँ।
उनकी कविता परवान क्यो नही चढती?
क्योकि
वह कोई
नया मुहावरा
नही गढती।
मुहावरा ही तो कविता की जान है
इसकी तलाश मे ही सारे नीतिज्ञ परेशान हैं
वही अगर नही
तो बात कौन सी नई है?
बात, तुम्हारी बात की नही है!

नही-नही, बातें मत करो
तुम्हारी बात वेहया है, नगी है
इसीलिए तुम्हारी कविता बेतुकी है, बेढगी है।
इसे सलीकेदार बिम्बो का लिबास पहनाओ
सभ्य समाज मे
उठने बैठने की तमीज सिखाओ।
वरना भाड मे जाओ!

फोड नही सकते तुम भाड को,
अकेले चने हो
कितने ज़िद्दी हो,
जाने किस मिट्टी के बने हो!
तुम कविता को लाठी की तरह घुमाते हो
निरीह, भोली आत्माओं को हडकाते हो
जो सदियो से भूँगडो मे खुश हैं—
उन्हे दाने दिखाते हो!

जानते हो,
तुमसे लडने के लिए हमारे पास
दल-बल है, बिल्ला है
आका के इशारे पर
भौंकने के लिए
हमारे टँटुओ मे छिपा
कुत्ते का पिल्ला है।

खैर, छोडो ये बातें
अपनी बात के साथ
राजमार्ग से आओ
दुर्गम पगडडियाँ त्यागो
हम सब तुम्हारे हमसफर हैं
हमे कधे पर बिठाओ
और सिर्फ इतना करो—
गाओ मत, बजाओ!
ढोल न सही,
तालिया, या फिर गाल!
देखो, कितनी सभावनाए हैं तुममे
कितना तेजस्वी है चेहरा
कितना प्रशस्त है भाल!

[1986]

आग और पानी

उसकी आखें सुर्ख थी और नम
मुझे लगा नमी सूखने पर उनसे
गर्मी जनम सकती है
गर्मी से तपन
और तपन से आग।

आग लाइटर की तरह पालतू बना कर
जेब मे रखने मे सुख देती है
मैं उस सुर्खी को
महकदार गुलाब की तरह
बटन-होल मे खोसना चाहता था।

लेकिन उसकी आँखें
सूखने लगी थी
फिर गर्मी, फिर तपन, फिर
तभी मैंने कहा—
"जानते हो,
आँखो के लिए पानी कितना जरूरी है!"
उसकी खुली आँखें
प्रश्न उगलने लगी
और मेरे वफादार दृश्य
मुट्ठियाँ भर-भर कर
आँखो मे मिर्च झोकने लगे।

[1969]

ऐसी स्थिति मे

माफ करना दोस्त,
अपनी प्रेमिकाओ की सरगोशियो
या
उत्तेजक ऋतु नायिकाओ की बदलती पोशाको को
सौन्दय-प्रतीको की दुहाई देकर
तारीफें लूटना
नही है
मेरा मकसद

खास तौर से उस वक्त
जबकि मेरे मानस मे उगे
रक्त-कमलो का पराग-केशर छीन कर
बदतमीज फिजाओ के षडयन्त्रकारी हाथो ने
उनके अधरो पर बारूदी चिंगारियां धर दी हो—
ये महफिल कितनी
बेमानी हो जाती है मेरे लिए !

इस वक्त मैं
अपने दिल के सबसे नाजुक रेशे से
तार-तार जोड कर
एक कवच तैयार करने में मशगूल हूँ
जिसके भावना-मय अग्नि स्पर्श से
वीतराग सूरज की शान्त किरन-दृष्टि
ज्वाला बन कर टूटे
और
इस समझौता-परस्त मौसम का
शासन झुलस जाए !

प्रजातन्त्र एक टकसाल है
जहाँ ईमान सिक्को मे ढल रहा है
और सिक्के
आश्वासनो की तरह खनखनाते हैं।

सत्तर करोड गूगे सवाल
घुटनो मे सिर दिए सोचते हैं—
आदमी कैसे बन जाता है सिक्का ?
आश्वासनो के इशारे पर
कैसे झपट्टा मार कर ले उडती हैं हवाएं
अधनगे मुर्दा शरीर का कफन ?
रोहिताश्व,
तुमने तो दुबारा जनम नही लिया ?

कैसा जादू सा हो रहा है ये ?
हर बार कोई शिखडी
ससद की मेज़ पर खडा होकर कहता है—
'अश्वत्थामा हत'
और हर बार
कोई सेनापति धनुष गिरा देता है।

हा, वे बहुत बडे जादूगर हैं दोस्त,
उन्होने सारी बस्ती के पौरुष को निचोड कर
एक छोटी सी शीशी में बद कर लिया है,
जिसे वे स्याही की तरह इस्तेमाल करते हैं।

फिरगी के कोल्हू में जुते हुए
अधे और बेज़ुबान गुलामो की औलादें
आज़ाद हो गई हैं
आज़ादी से नापते हुए

भूखी धरती के अक्षांश और देशान्तर
एक समाजवादी फीते की लम्बाई
गुरसा हो रही है।
टुकड़े-टुकड़े कगली जिजीविषा
ब्लड बैंक के सामने खड़ी है—
अपने ही खून को बेच कर
जिन्दा रहने की कोशिश में।

सवाल गौर करने का है लोक-सभा में
'क्या मेरे देश में भूख से मौत हो सकती है ?'
जवाब सरकारी गणित की तरह साफ है—
चूँकि भूख से मौत का अर्थ है—
गरीबी से मौत
और गरीबी इन्सान का सबसे बड़ा गुनाह है,
इसलिए साबित हुआ कि मेरे देश मे
आदमी भूख से नही
गुनाहो से मरता है।

सवाल गौर करने का नही
बहस करने का है।
बहस एक गगा है, बहती हुई
हाथ और पाप धोने के लिए।

मेरे विशाल शरीर की एक एक रग
गुनाह और गुनाहगारो से पट गई है।
हवाओ के सफो पर कुछ लफ्ज उभर आए हैं
मैं गौर से पढ़ने की कोशिश कर रहा हूँ
धूप और तेज़, और तेज़ हो गई है
समझौता परस्त मौसम
सूरज की आखो को अधा कर देने के लिए

एक नई साजिश रच रहा है।
और,
मेरे अधूरे कवच का एक तार कहीं छूट गया है।
ऐसी स्थिति मे दोस्त,
ये महफिल कितनी बेमानी हो जाती है—
मेरे लिए!

[1968]

वसन्त ऋतु मे आवारा छोकरा

कितना मुश्किल होता है
किसी सुनसान, सूखे जगल मे घिरे हुए
एक शापित चीख की जलती देह को
अनदेखा करके
चिगारियो को
वासन्ती फूलो की तरह
ओठो पर धर लेना

कितना मुश्किल हो जाता है
विपयय के विस्फोट से उफनती हुई
लावे की नदी मे उतर कर
पिंडदान करने की मुद्रा मे
अपने पूवजो के पापो का प्रायश्चित करना
और करते चले जाना !

वेहद, वेहद मुश्किल हो जाता है
सुलगती हुई बजर धरती की पसलियो पर
खडे हो कर
बूढे आकाश की अधी आँखो से
कभी न टपकने वाले आसुओ की प्रतीक्षा करना
और
लू के नृशस थपेडो
या चिता की दहकती लपटो से पूछना
'सुनो, कसा होता है वसन्त ?
कितना अनपेक्षित होता है
आवारा छोकरे का ये प्रश्न

आंखें फाड कर देखने लगती है
दसो दिशाएँ
जड हो जाती हैं उनचास पवन-पताकाएँ
पूर्वजो को प्रेतात्माएँ
रस्सी की तरह बँटती चली जाती हैं—
दिमाग की रगें !

कितना नासमझ है ये आवारा छोकरा
जो होश मे रहने पर
हवाओ से लडता है
बूढे आकाश को कोसता है
पूवजो के आशीवचन अस्वीकार कर देता है
और झुलसती हुई चीख के समथन मे
अपनी देह पर
सारा का सारा जगल ओढ लेता है।

लेकिन
बेहोशी मे बडबडाता है—
"ओ हवा, ओ जगल, ओ आग
कब आएगा मेरे देश मे वसन्त ?
मैं उससे बहुत प्यार करता हूँ।"

[1969]

ताजमहल तक यात्रा रथ

और,
अचानक उग आता है
करोडो कटी भुजाओ की
फौलादी नीव पर खडा
एक ऐय्याश ताजमहल
मेरे दिमाग मे !

बुझ गई ह मशालें
और उल्लू की आँख से निकलती है रोशनी
कवायद करती हुई स्थितिया
गुजर जाती हैं राजमार्ग पर
सलामी लेती है
फूस भरी बोरी—
जिसके पेंदे मे पहिए लगे हैं !

लफ्फाजी के कोडो से घायल
नगी पीठो पर
उपलब्धियो का
इतिहास लिखा जा रहा है
और दरबारी-गण
मत पत्रो का व्याकरण रच रहे ह !

टूट जाती है तने हुए धनुष की डोरी
छटपटाता है
एकलव्य का कटा हुआ अँगूठा
द्रोण आज की रात "नाइट क्लब" मे बितायेंगे !
सज्ञाएँ मुह चिढाती है

एकान्त मे पाकर मुझे
मुझसे मजाक करती है
मेरी चेतना—
कितना बडा !
मेरा सारा शरीर सुन पड जाता है
और दिमाग मे
एक ऐय्याश ताजमहल
उग आता है,
फौलादो नीव पर खडा !

मैं कला-महोत्सव के
सजे हुए मच से कूद कर
फैले रास्तो और घुमावदार गलियो को
पार करता हुआ
एक पौराणिक धर्मशाला के
खंडहर मे घुस जाता हूँ।

बडी-बडी धार्मिक पोथियो की
छोटी-छोटी चिन्दिया सिर पर उठाए
किराए के किरतनिए गुजरते हैं !
मन्त्रोच्चार करती है
कुछ गुलाम जुबानें।
'सत्यम शिवम सुन्दरम' की
धुन बजती है
और शहरी सुअरो के लटके हुए पेट
मजीरो की ताल पर
झूमने लगते है।
मूल्यो की शव-यात्रा
और ईश्वर की शोभा-यात्रा
दोनो यही से आरम्भ होती है
और यही समाप्त !

किरतनियो की मडली
चौराहे पर आकर बन जाती है—
सटोरियो की भीड ।

तस्करी सोना और गेहूँ के भाव
पालतू आदमी का खून और
कुंवारी औरतो का भ्रूण
राष्ट्रीय ध्वज और भाषा का प्रश्न
विधान सभा और गोलियो की बौछार
सबके सौदे होते हैं
सटोरियो की भीड सबके सौदे करती है
बिना किसी किसिम की
खरीद-फरोख्त किए !

कुछ नही मिलता किसी को
सस्ते अनाज की दूकानो मे
मिल जाता है ईश्वर की शोभा यात्रा का रथ
जिसके पहिए की धुरी
कभी नही टूटती ।
बिखर जाती है सटोरियो की भीड
दिशाओ मे मार्फिया की गोलिया फेंक कर
मुर्दा हो जाती है चहल-पहल
और मेरे दिमाग में
उग आता है एक ऐय्याश
ताजमहल !
मैं दिशाओ के प्रेत से घबराकर
एक अधेरी अन्तर्गुहा में घुस जाता हूँ ।

कदराओ के अन्दर की
कदराओ मे भटकता हुआ

किसी कत्लगाह से आती हुई
एक औंधे लटके मेमने की
मिमियाहट सुनता हूँ—
जो किसी प्रलय की प्रतीक्षा में
बूंद-बूद रक्त टपकाता है।
ओ परमात्मा, तू कहाँ है ?
हे प्रभु, तू क्या है ??
अरे ओ ईश्वर, तू क्यो है ???
रक्त और मांस का बना मेमना
खोजता है, हवा मे घुल गए
ईश्वर को।

और फिर
असतोप जनमता है।
भाड मे भूनने लगता है
दोहाइयां और सकल्प
फिर झुलसा लेता है
अपने ही बाजू।
नाखूनो से
नोच लेता है अपना पेट।
सोचता है
मैं हो जाऊँ एक से अनेक
और अनेकानेक
लाखो, करोडो, अरबो, खरबो
क्षार-क्षार हो जाए मेरा रध्र
सारे ब्रह्माण्ड मे छा जाऊँ
हवाओ पर चढ कर।

वर्तमान।
आसमान के छिलके छीलता हुआ

एक कृपाण
भोंथरा, सिद्ध हो जाता है
तराशने के लिए
फेरी वाले धारिए की प्रतीक्षा मे
घुटनो मे सिर रख कर
बैठ जाता है।
कोई बुर्ज टूट गिरती है और मैं
कमन्द फेंकने की कोशिश मे
पूर्वी कोने की मीनार से लटक जाता हूं
दातो से भीचे हुए एक तेज़ चाकू!
हथेलियो का पसीना
इबारत बन जाता है
कृपाण काम नही करता
हवा मे
या समुद्री झाग मे।
पैने से पना लोहा भी
गल जाता है
ग्लोब के अन्दर की आग में!
लेकिन तभी
टूटी हुई बुर्ज
दशानन के सिर की तरह उग आती है
एक ऐय्याश ताजमहल की
मेरे दिमाग मे!

[1968]

लपटों से घिरे हुए

उसका कसूर यह था
कि वह
उनकी जाजम पर आ बैठा।

वे लोग
नक्काशीदार भाषा का
एक गीत गा रहे थे—
दूध-धुले स्वरों में।

उनके शब्द
आहिस्ता-आहिस्ता
गोदने लगे एक निशान
उसके ललाट पर
जो उसके लिए कतई अपरिचित था।
यकायक वह चीखा—
शब्दों के शीश पर
उगने लगी थीं कृपाणें
कृपाणों की नोकों पर
नाच रहे थे निशान
निशान को घेर कर
खड़ी थीं शब्दों की सुसज्जित सेनाएँ।

उसने चाहा
कि शब्दों की काँटेदार वर्दी उतार कर
वह उनकी कोमल त्वचा का स्पर्श करे
उनके स्वस्ति-मुख पर
चिपकी विचित्र आकृतियाँ

उतार कर फेंक दे।
सीगो की तरह उगी कृपाणो पर
उसे आश्चय था और आक्रोश !
उसका अपराध इतना भर था
कि उसने शब्दो की धार पर
अँगुली रख दी थी !

रिसता हुआ लहू
अमृत के विशाल सरोवर तक जा पहुँचा
फैलने लगे
श—ब्—द
और देखते-देखते
तन गए भयावह तम्बुओ की तरह !
कितना आश्चय जनक दृश्य था—
पच-परमेश्वर
तलवारो की म्यान मे घुस गए थे
और झडो की तरह
लहरा रही थी तलवारें
फूल सहमे हुए थे
जत्थे के जत्थे
पत्तिया काप रही थी
सतो की वाणी की तरह

एक हिंसक लिप्सा की आखो से
आदेश का दरिया बह निकला।

वह एक अत्यन्त आवेश-पूण समय था
उसके लिए,
किन्तु वह
उत्तेजना मे कोई निणय नही लेना चाहता था
वह चाहता था कि उसके प्रश्न
बहम की तरह फटें
गिरें, उठें और फिर चलें

टूटे हुए घुटनो और
कटी हुई जघाओ के बावजूद !
लेकिन तभी
उसके धडकते हुए सवालो की
जीभ काट ली गई।
उसका कसूर यह था
कि उसने
विवेक के सीने मे झडा नही घोप दिया !

बदहवास शोर बढने लगा
रौंदते हुए
कटी हुई जीभें और गूगे सवाल
सदा बहार उपवन की ओर !
गुंगवाते हुए खून के बलबले
सूख कर
कत्थई गुलाब की तरह महकने लगे थे !
उसने खुशबू की रस्सी को
मजबूती से पकडा
और अधेरी दुनिया मे
उतरने लगा
चौकन्नी चेतना के साथ !

सारी गलियां
गुप्त तहखानों की तरफ मुड गई थी
अलावो मे जलती हुई पोथियां और ग्रथ
जवान खोपडियो को भून रहे थे—
दैत्याकार हाथो से !
बाहर मैदानो मे
गारद मशक्कत कर रही थी
असभव करिश्मे की तरह
आरे से चीरते हुए तक !!

अदृश्य तर्क को पकडने के लिए

उसने
कालो गाढी हवा के कधे पर
हाथ रखा।
सडे हुए मांस के लोथडे के लोथडे के लोथडे
गिरने, बिखरने, फलने लगे
दहशतनाक खाइयो
और शर्मिन्दा द्वारो के गिर्द !

हिनहिनाते हुए विचार
बेचैन टापो से उडाने लगे धूल !
थाम कर लगाम
उसने एड लगाई
खदको, बावडियो, तहखानो को
फलागने की कोशिश मे
उसने विचारो का पूँछ मरोडी—
मरोडता चला गया !
फुनगियाँ, पत्तियाँ, पाँखुरियाँ,
कँपकँपाती नदियाँ
नीली नसो वाली घाटियाँ
झुकी हुई रीढ वाले पहाड
हतप्रभ थे
अघोषित युद्ध की मुट्ठियो में कसे—
फँसे !

बादल की आखो से
सुर्ख पानी टपकने लगा
बेकाबू शब्दो के जत्थे
माथे पर उगी हुई कृपाणें नचाते
हथेलियो मे आग के गोले लिए
द्वार से लेकर सरोवर तक फैल गए।
लपटो से घिरे हुए
हौल खाए बच्चे की तरह
वह विचारो की अयाल से चैठ गया।

वह मूर्च्छित था
जब उसे अन्तिम बार देखा गया।
पता नहीं
वह अब तक
जीवित है
या मृत।?

(1986)